संपादकीय

अल्प पोषक भोजनः

सर्वप्रथम उन्होंने निर्धन की परिभाषा बदली, फिर सकल घरेलू उत्पाद की और इसी प्रकार से परिभाषाऐं बदलते रहे, जहां तक की किसानों की आत्महत्या की तालिका की परिभाषा भी बदल दी। लेकिन वास्तविक स्थिति नहीं बदली। हो सकता है कि अगली बार वे किसान कौन होगा उसकी परिभाषा भी बदलें।

निर्धनता को वर्गीकृत करने की 1.25 अमरीकी डॉलर यह मूल रेखा है, यह उतनी ही विवादास्पद है जैसे विश्व 2012 में खाद्य असुरक्षा की स्थिति, जिसमें उल्लेख किया गया है कि जैसे–जैसे अनाज के मूल्य बढ़ते हैं तो अल्प पोषक भोजन खाने वाले लोगों की संख्या घटती है।

वास्तविक आंकड़ों में खाद्य मूल्यों और भूखों के संबंध को उल्टा दिखाया जाता है, इन्हें हम समान नहीं मान सकते।

अल्प पोषक भोजन की समस्या का समाधान संभव है, लेकिन कुपोषण की समस्या अभी भी दुख–दाई है।

अन्य सभी पौषक तत्वों को नजरअंदाज करने के पश्चात भी डाईट उर्जा की गणना के आधार पर भूख की परिभाषा 1800 कैलोरी है।

प्रभावित लोगों के न्यूनतम कार्य करने के अनुसार उनके लिऐ आवश्यक कैलोरी की गणना की जाती है। किंतु शारिरिक कार्यों के प्रकार एक अर्थव्यवस्था से अन्य अर्थव्यवस्था के लिऐ भिन्न होंगे।

खाद्य उपलब्धता और खाद्य उपभोग में अंतर पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है।

भारत में एक और तो भंडारण समस्या है और वह मीट का सबसे बडा निर्यातक देश है तो दूसरी तरफ लोग देश भर में भूखमरी के शिकार हो रहे हैं।

जनसंख्या आधारित – शहरी जनसंख्या की तुलना में गांव के अधिकतम लोग कम कैलोरी ले पाते हैं और वे अधिकतम कम पौषक भोजन खा पाते हैं।

वे लोग, जो निर्धन नहीं हैं, भी कम पौषक भोजन के शिकार हैं जिन्हें सवैछिक भूख रखनी होती है और कहते हैं कि वे डाईट पर हैं।

देश में दालों की कमी होना कम पौषक भोजन का प्रमुख कारण है।

वैज्ञानिक प्रयास करते हैं और अपने अनुमान को सिद्ध कर देते हैं, इसका प्रमुख कारण यह है कि जब आप कोई भी परिणाम आंकड़ों के माध्यम से इकट्ठा करते हैं तो आपको आंकडों में हेरफेर के कारण वही परिणाम मिल जाता है जो आप सदा चाहते हैं।

मैं पिछले कुछ वर्षों में कुछ एक टाईम खाद्य सुरक्षा और पौष्टिकता के यूनाईटेड नेशन के महासचिव के विशेष प्रतिनिधि डॉ० डेविड नबारो से मिला और खाद्य और पौषक भोजन के मुद्दे पर अपने विचार प्रकट किऐ।

विकास के लाखों लक्ष्य निर्धारित कर लें लेकिन यदि पौषक भोजन और निरंतर विकास के लक्ष्यों को नजरअंदाज करते हैं तो इस कमी के कारण कोई सकारात्मक परिणाम नहीं मिलेगा। पर्यटन और पौषक भोजन के विषयों में एक समान विचार प्रकट नहीं किऐ जा सकते कम से कम मैं तो नहीं कर सकता।

अल्प पौषक भोजन के शिकार अधिकतम लोगों में किसान शामिल है।

'निर्धनता, कम पौषक भोजन, कुपोषण, भूख और रोजगार जुटाने के मुद्दों को उन्नत कृषि अपनाकर सस्ते में सलझाया जा सकता है – जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन, मछलीपालन और बागवानी अपनाकर।'

मेरा मानना है कि यदि हम एक मानचित्र पर सभी किसानों की आत्महत्या को स्थान दें तो वह स्थान भारत में वर्षा आधारित क्षेत्रों को ढ़क लेगा। इसका सहसंपर्क भूख और कम पौषक भोजन से करना चाहिऐ।

एकल किसान परिवारों की आत्मनिर्भरता का लक्ष्य और पौषक भोजन की जागरूकता बढ़ाने के लक्ष्य पर जोर देना चाहिऐ जैसे की हमारी मिड़–ड़े मिल योजना में सोयाबीन को स्थान देकर न की इस सोयाबीन को निर्यात करने पर प्रोत्साहन दिया जाऐ जिसे वहां पशुओं को खिलाया जाता है।

देश के लोगों में जिंदगी भर के लिऐ थोड़ा–थोड़ा बांटने से निर्धनता में न ही कम पौषक भोजन में कमी लाना संभव है क्योंकि हम उतने अमीर नहीं हैं न ही यूरोप के देश थे। इस प्रकार के अस्थाई उपाय करने से कुछ समय के लिऐ मामूली राहत ही प्रदान की जा सकती है।

उपरोक्त सभी कमीयों को दूर करने के लिऐ आयात बढ़ाने की प्रक्रिया स्थाई समाधान नहीं है।

अल्प पौषक भोजन पर अंतर्राष्ट्रीय खाद्य व्यापार करारों के परिणामों का समाधान करना आवश्यक है। भारत और विश्व अनाज की कमी का सामना कर रहा है न कि मुद्रास्फीति का।

सस्ती दर पर अनाज का आयात करना आयातक देश के गरीब लोगों के हितों के लिऐ हानिकारक है।

मुद्रास्फीती बनाम अपस्फीती Inflation vs. deflation

दो दशकों से अधिक समय से किसानों के मुद्दों पर वार्तालाप क्षीण होती जा रही है। सभी सरकारों द्वारा इन महत्वपूर्ण मुद्दों को अनसुना करने से पिछले कुछ वर्षों में यह निर्णय लिया गया कि किसानों के मुद्दों को राष्ट्रीय वार्तालाप का टॉपिक बनाया जाऐ। यह जानने के बाद की निरंतर कृषि क्षेत्र में निराशा व्यापत होने से स्थिति भयानक होती जा रही है और विद्वानों या शोध करने वाले लोगों द्वारा नितियां बनाने से किसनों के हितों की रक्षा नहीं हो पाई है। प्रत्येक निति निर्माता (इस समाचार पत्र के कॉलम सहित) उन नितियों पर ध्यान केंद्रित करता है जो खाद्य मुद्रास्फीति से संबंधित हैं, जबकि हम डरते हैं और काफी लंबे से खाद्य अपस्फीती की चिंता से सरकारों को अवगत कराते आ रहे हैं। कृषि क्षेत्र की इस दुगर्ति के कई कारणों में से एक कारण यह है कि कृषि नितियां कृषि शिक्षकों या शोधकों द्वारा तैयार की जाती हैं।

पिछले वर्ष मुद्रास्फीति के ड़र से नई सरकार ने आलू के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया था। हमने इस प्रतिबंध के विरूद्ध आवाज उठाई (शनिवार, 5 जुलाई, 2014 के इंडियन एकस्प्रैस में पडें – 'मेकिंग ऐ हैश ऑफ ईट') किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। इस मौसम में आलू की बिक्री रू. 2/– कि.ग्रा. तक हुई है। जब जिंसों के मूल्य गिरते हैं तो सरकार अधिनियमों को गायब कर देती है। अब सरकार ने प्याज के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया है। किसानों के भविष्य और व्यापारियों के अच्छे दिन का सपना धूमिल होता जा रहा है। जब सरकार आलू और प्याज उत्पादकों को कोई समर्थन मूल्य नहीं देती है तो सरकार को इनकी बिक्री में भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिऐ। हमारी समस्या अच्छे भोजन की कमी होना नहीं है बल्कि सही नितियों की कमी है।

निति निर्माता पहले खाद्य मुद्रास्फीति का बखान बढ़ा–चढ़ाकर करते हैं और मुद्रास्फीति पर नियंत्रण रखने के लिऐ खाद्य आयात को सही साबित करते हैं। अर्थशास्त्री निराश होकर यह मानते हैं कि खाद्य मुद्रास्फीति बारह–मासि है और इसका समाधान नहीं किया जा सकता। लेकिन किसान आशावान है और हम किसान लोग देश के लिऐ पर्याप्त उत्पादन कर सकते हैं लेकिन अपस्फीति की समस्या से डरते हैं। विभिन्न लक्ष्यों के लिऐ विभिन्न समाधान होने चाहिऐं। अर्थशास्त्री नियमित रूप से भारत में कृषि आर्थिक सहायता को समाप्त करने पर दबाव बना रहे हैं ताकि संसाधन बचाऐ जा सकें और किसानों को आयात करने के लिऐ भी प्रोत्साहित किया जाता है। इसके विपरित हम उत्पादन की प्रति क्विंटल की दर पर आर्थिक सहायता कम करने की वकालत करते हैं। यदि कोई किसानों को सुने तो हम चाहेंगे की उत्पादन की गुणवत्ता बढ़े, अधिकतम फसलों को उत्पादन 20 प्रतिशत बढ़े और उसी अनुपात में किसानों का लाभ भी बढ़े जिसके बदले में किसानों को उत्तम कृषि मशीनरी उपलब्ध कराई जाऐ। इस प्रकार के छोटे–छोटे कार्य बिना किसी अतिरिक्त बिजों, उर्वरकों, कीटनाशकों या पानी के हो सकते हैं। कम मात्रा में माल रखने से किसानों को लागत भी मिलने वाली नहीं है। मशीनरी उपलब्ध कराने का अर्थ यह नहीं कि एक–एक किसान को उपकरण उपलब्ध कराऐ जाऐं जिसके लिऐ किसान को ऋण लेना पड़े बल्कि उपकरण सेवाऐं पट्टे या किराऐ पर उपलब्ध कराई जा सकती है। भारत सरकार को अच्छी और सस्ती कृषि मशीनरी के निशुल्क आयात की अनमुति देनी चाहिऐ और इन उपकरणों को पट्टे पर देने के लिऐ प्रोत्साहित किया जाना चाहिऐ। इसी प्रकार से कई सामान्य कार्यवाहियां करने पर देश में फसलों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। यू.पी.ऐ. सरकार की तरह यदि भारतीय जनता पार्टी भी शिक्षकों या केवल शोधकों के ज्ञान के अनुसार ही कार्य करेगी और यह समझेगी की देश पर किसानों के विचार तो बोझ हैं, तो यह मानना होगा कि भारत स्थाई रूप से विकासशील देश ही बना रहेगा।

वर्ष 2012–13 में अंतर्राष्ट्रीय जिंसों के बढ़े हुऐ मूल्यों में गिरावट दर्ज की थी क्योंकि चीन ने सभी बैंकों द्वारा लिऐ गऐ पैसे के लिऐ कृषि जिंसों को गारंटी के रूप में मानने से इंकार कर दिया था। आने वाले वर्षों में मांग

के अनुसार पूर्ति की जाती रहेगी। इस महीने में ऐफ.ऐ.ओ. हमारी अपस्फीति की भविष्यवाणी को माना है। वर्तमान में बहुत सी बहुराष्ट्रीय जिंस कंपनियां भारत में अनाज खरीदने के लिऐ दुकाने खुल रही हैं किंतु उनका प्रमुख लक्ष्य आयातित अनाज को बांटने के लिऐ अपने नेटवर्क का उपयोग करना है। बहुत से देश जैसे अमरीका, कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील और जहां तक कि अफ्रीकी देश भी जो अधिक अनाज उगाते हैं उन्होंने ने पहले ही निषकर्श निकाल लिया है कि भारत और चीन अनाज की सबसे बड़ी मंड़ियां हैं और इनके लाभ उठाने के लिऐ यह देश तैयार कर रहे हैं। इन देशों ने यह जान लिया है कि हमारे निति निर्माता असफल होते रहेंगे और आने वाले समय में जल की कमी के कारण इन देशों को ऐसे अवसरों का लाभ मिलेगा। यह विश्वास करना की अनाज की कमी और मुद्रास्फीति का समाधान आयात से हो सकता है, यह उसी प्रकार होगा जैसे किसी भोले–भाले व्यक्ति को यह विश्वास दिला दिया जाऐ कि ऐलिस वंडरलैंड में रहती थी।

जल का उपयोग कम करने के लिऐ अर्थशास्त्री सुझाव देते हैं कि चावल पर आयात शुल्क 70 प्रतिशत से कम करके 5 प्रतिशत कर दिया जाऐ। ऐसा करने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता है और इस पर चिंतन करने की भी आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आगे सुझाव दिया है कि किसानों को चावल के स्थान पर दालें उगाने के लिऐ रू. 3,000/– प्रति एकड़ का प्रोत्साहन दिया जाऐ। यदि किसानों को इस राशि का 3 गुना भी दे दिया जाऐ तो भी वे दालें नहीं उगाऐंगे। रिकॉर्ड़ के लिऐ कहना चाहता हूँ कि किसान धान के स्थान पर दालें तब भी नहीं उगाऐंगे यदि बिजली पर मिलने वाली आर्थिक सहायता उनसे वापिस ले ली जाऐ, हाँ ऐसी कार्यवाही करने से जल का उपयोग निश्चित रूप से कम होगा यदि सरकार का यही लक्ष्य है तो इसकी प्राप्ति हो जाऐगी। उद्यौगिक संघों और अंतर्राष्ट्रीय कॉरपोरेट के लिऐ यह आम कार्य है कि वे संस्थाओं को पैसा उपलब्ध करा देते हैं कि ताकि वे अध्ययन, परियोजनाओं और रिपोर्ट तैयार करें ताकि वे निति, विचारों और समाचार पत्रों में लेखों को प्रभावित कर सकें। केवल शिक्षा विद्वानों से ही कृषि नितियां तैयार करवाना बिलकुल वैसा ही होगा जैसा किसी जैनेटिक मौड़िफाईंग बिज निर्माताओं को कहा जाऐ कि वे अनाज की सूचना से संबंधित दिशा निर्देश तैयार करें।

'ग्रामीण संकट' शीर्षक पर आयोजित सम्मेलन का सार

जयदीप हारदिकर – विशेष संवाददाता, दि टेलीग्राफ

मैं केवल एक संवाददाता हूँ जिसका काम खबरों का पुलिंदा लाना है और देखना है कि इन खबरों का क्या हो सकता है, लेकिन मैं एक ऐसे क्षेत्र से संबंध रखता हूँ जो बुरे कारणों और बुरे समाचारों के कारण मशहूर है। इसका मुझे दुख है और मैं न केवल व्यथित हूँ बल्कि इसके लिऐ नाराज भी हूँ कि मैं 20 वर्ष से संवाददाता का काम कर रहा हूँ।

मैं पहले दिन से जब संवाददाता था लेकिन अभी तक मेरे पास आत्महत्याओं के ही अधिकतम समाचार आऐ हैं। इन कारणों से मैंने कई बार सोचा कि मैं संवाददाता का कार्य छोड़ दूँ और क्या पत्रकारिता यही है। मैंने पत्रकार के रूप मैं लोगों की आवाज उठाने का प्रयत्न किया है लेकिन कोई सुनने वाला ही नहीं।

मेरा जो कुछ भी अनुभव है वो मूल रूप से आज देशभर में व्याप्त प्रस्थितियों के विवरण से संबंधित है। इस प्रकार पहले 10 – 15 वर्षों में मुझे कृषि क्षेत्र और कृषि संक्रमण से संबंधित विषयों पर अपने विचार प्रकट करने पड़े। जैसा आपने सही कहा है कि हम ग्रामीण संकट के अभूतपूर्व कठिन समय से गुजर रहे हैं और मेरा मानना है कि हम इस कठिन संकट के दूसरे या शायद तीसरे चर्ण में प्रवेश कर रहे हैं।

लेकिन यह ग्रामीण संकट नहीं है। मूल रूप से यह भारतीय संकट है, ग्रामीण भारत में रहने वाले लोगों को गांववासी के रूप में एक अलग वर्ग में नहीं रख सकते। अनिवार्य रूप में वह भारतीय हैं जिस भारत में मैं और आप बड़े हुऐ हैं। मैं निजी रूप से अपने 20 वर्ष के लंबे अनुभव से महसूस करता हूँ कि मैंने पत्रकारिता में जो सीखा है यह न तो कोई गाँव न कृषि या किसान अथवा शहर में रहने वाले का संकट है बल्कि यह भारत का संकट है। यदि मुझे इसे आगे स्पष्ट करना है तो मैं कहना चाहूँगा कि यह विश्व संकट है क्योंकि जो संकट यवतमाल में हवदा जैसे गाँव के श्री राम राव जैसे किसान झेल रहे हैं, लगभग यही कहानी कुछ पश्चिमी अफ्रीकी देशों के किसानों की है जहाँ के घाना के एक दूर के गांव में किसान अपनी भूमि बेच रहे हैं या पट्टे पर दे रहे हैं। सरकार कहती है कि अधिक अनाज को अपने देश में वापिस ले जाओ। यदि मैं इन घटनाओं को निषकर्ष में ब्यान करूँ तो किसानों के लिऐ अप्रैल, मई और जून 3 महीने बहुत संवेदनशील होते हैं। किसान अपने पिछले वर्ष के खर्चों की गणना करते हैं और अगले वर्ष के खर्चे का हिसाब लगाते हैं। इन तीन महीनों में जब आपकी दहलीज पर केवल यही सुनने को मिलता है कि पिछले वर्ष क्या हुआ, अगले वर्ष क्या होगा, इसी प्रकार से जो हो रहा है उसका विवरण दिया जाता है। विश्वास किजिऐ जब देश के लोगों को 2 महीने में बजट की प्रतिक्षा या सनक होती है उस समय आप किसानों से मिलें और आप पाऐंगे की वह किसी दूसरे गृह पर रह रहे हैं। दिल्ली और उन गांव के हालात बिलकुल अलग हैं वह पूर्ण रूप में किसी और दुनिया में रहते हैं जैसे किसी तीसरे या चौथे गृह अथवा भिन्न गृहों पर रह रहे हों।

उनके मुद्दे और आवश्यकताऐं बिलकुल अलग होती हैं। दिल्ली में हो रही घटनाओं के विपरित उनका वार्तालाप और सोच विचार बिलकुल अलग होता है। दिल्ली में लोगों की सनक होती है कि वे पैसा कैसे खर्च करें जबकि उनकी चिंता यह होती है कि अगला खाना कहां से आऐगा और अगले वित्त की व्यवस्था कहां से हो सकती है।

मैंने एक मझौले किसान से बातचीत की जो मुझे एक सरकारी कार्यालय में मिला था। यह किसान बहुत चिंतित और उदास था, जिसके पास एक थैला था, वह एक दलित किसान था जिसकी उम्र लगभग 50 साल थी। मैं उसकी समस्या जानने के लिऐ उसके साथ उसके गांव गया था। वह एक आवेदन पत्र लाया हुआ था जिसमें उसने सरकार से एक छोटी सी प्रार्थना की थी लेकिन उसकी प्रार्थना कूड़ेदान में डाल दी होगी। किंतु यह आश्चर्यजनक है कि उसके एक या दो पृष्ट के पत्र में उसने वह लिखा था जो वर्ष 2015 में उसकी खेती का हाल हुआ।

वह सरकार से क्या उम्मीद करता है – उसे जिंदा रहना है और वह जिंदा रहना चाहता है। यह पत्र मराठी में था। निश्कर्ष में उसका कहना था कि उसके पूरे जीवन में वर्ष 2014–15 बद्तर वर्ष था। वह पिछले 40 वर्षों से खेती कर रहा है। उसका कहना है कि कोई फसल नहीं है और कोई मूल्य भी नहीं है। इस प्रकार की दोहरी मार वाली घटनाऐं कभी कभार ही आती हैं।

इस प्रकार उसका कहना है कि किसानों की फसलें नहीं हैं, किसानों के लिऐ कोई मूल्य नहीं है। इसलिऐ यह एक ऐसा अभूतपूर्व वर्ष था जिसमें कृषि की ऐसी बद्तर हालत हुई और पिछले कम से कम 20 वर्षों में ऐसा मंदी का दौर नहीं था।

पिछले 20 वर्षों में मैंने देखा है कि प्रत्येक वर्ष आप भूमि से कुछ न कुछ और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के खाते से भी कुछ न कुछ वापिस लिया जाता है और कृषि क्षेत्र पर बहुत कम ध्यान या पैसा दिया जाता है।

कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि हम भूमि से बहुत अधिक उत्पादन प्राप्त कर रहे हैं और भूमि में माईक्रो–न्यूट्रिऐंटस नहीं रह गऐ हैं। जब में आंकडे देखता हूँ तो पाता हूँ कि हम पहले भूमि से 60–70 कि.ग्रा. अनाज प्राप्त कर लेते थे अब गिरकर यह 5–6 कि.ग्रा. रह गया है क्योंकि भूमि में उत्पादक तत्व नहीं रह गऐ हैं। इसी प्रकार से अर्थव्यवस्था में भी संकट है, आर्थिक प्रक्रिया भी धीमी है, क्योंकि हम तो सूचनाऐं दे रहे हैं और देते रहेंगे। 1990 के वर्षों में लोग इतने ऋणी थे कि उन्हें कोई चिंता नहीं थी। अब यदि किसान को ऋण मिलता है तो लोग इंतजार करना नहीं चाहते, वे सस्ता और आसानी से मिलने वाला ऋण ले लेते हैं और ऋण के बोझ तले दब जाते हैं। जैसा रामा राव ने मुझे बताया वह 54 वर्ष का किसान है और भाग्यशाली भी है। उसने 2 बोतल कीटनाशक पी ली और बच गया और मुझसे पूछा कि क्या कीटनाशक भी मिलावटी थी। मैं यदि बच गया हूँ तो इसमें मिलावट होगी और अब ईलाज इतना मंहगा हो गया है कि ईलाज के बिल का भुगतान करने की जगह मर जाना सस्ता होगा। मैं बिलों के भुगतान के लिऐ पैसा कहां से लाऊँगा। उसने एक बहुत अच्छा चुटकला लेकिन कड़वा सच मुझसे कहा, 'मेरे लिऐ मौत सस्ती है और जिंदगी बहुत महंगी'।

यदि आप ग्रामीण भारत की स्थिति देखें या देश के अधिकतम भागों, चाहे शहर में झुग्गियों में रहें, तो आप यह संकट, यह निराशा तब ही महसूस करेंगे जब आपको ऐहसास हो जाऐ कि जिंदगी से मौत सस्ती है और इसका कारण अर्थव्यवस्था में कमी है।

चाहे आप बाजार के अनुयाई या बी.टी. के पक्के समर्थक हैं या जी.ऐम. फस्लों के या मार्क्सवादी हैं इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। मैं एक किसान हूँ, मेरे पास पैसा नहीं है, कृप्या मेरी समस्या का समाधान करो। आपने पिछले 40–50 वर्षों के शासन में समस्याऐं ही उत्पन्न की हैं और एक किसान होने के नाते मैं किसी भी द्वीपक्षिय सम्मेलन या बहुपक्षिय सम्मेलनों में विचार प्रकट करने के लिऐ नहीं पहुंचता हूँ। मुझे अपने बाजार में अमेरिकी चिकन की जरूरत नहीं है। यह आपका कार्य है, आप ही यह सब ला रहे हैं। यह एक वास्तविक प्रश्न है कि

यदि आप इस प्रकार की नितियां तैयार करते हैं तो आपको इस बारे में भी कुछ करना चाहिऐ, लेकिन इस मंदी अर्थव्यवस्था से जो कुछ भी गांव में घटित हो रहा है वह अभूतपूर्व है। वह किसान पिछले 5 वर्षों से अपने बेटे की शादी टालता आ रहा है, वह कब तक टालता रहेगा। वर्ष 1987 में सूखा पड़ा था, वर्ष 2005 में भी और वर्ष 2009 में, इसी प्रकार वर्ष 2013, 2014 और 2015 यह समाप्त ही नहीं हुआ।

इस वर्ष उसने अपनी आखिरी सम्पत्ति बैल को भी बेच दिया और अब किसान के पास बेचने के लिऐ कुछ नहीं रहा। किसान अपनी जमीन बेचना चाहता है, लेकिन आसपास खरीददार ही नहीं है। देश के कुछ हिस्सों में जैसे विदर्भ, मराठवाड़ा में कुछ किसान ऐसे हैं जो समस्या का सामना कर रहे हैं। मैं भी स्तर्क हूँ क्योंकि किसान समुदाय बहुत कर्मठ और परिश्रमी समाज है, जो मिलकर मंदे बाजार और सरकारी नितियों तथा इसके साथ–साथ अन्य सामाजिक दायित्वों का मुकाबला करने का प्रयास कर रहा है।

किंतु जब अर्थव्यवस्था पूरी तरह से मंदी हो तो आर्थिक दबाव होता ही है। मैं रामा राव जैसे किसानों की जिंदगी में अनिश्चितताऐं देख सकता हूँ और यह बढ़ रही हैं। संकट और गंभीर होता जा रहा है।

अब यह दबाव इतना बढ़ चुका है कि एक ही घर से दूसरी या तीसरी आत्महत्या की खबर मिल रही है। जिस आत्महत्या की खबर मैंने 1987 में दी थी उसके बच्चे अब बड़े हो चुके हैं। 8 दिसंबर को जब मैं यवतमाल में यात्रा कर रहा था तो एक छोटी कपास तहसील में मेरे दोस्त के किसी आदमी ने सूचित किया कि 2 लोगों ने आत्महत्या कर ली है और शव अभी भी मुर्दाघर में पड़े हैं। अब मुर्दाघर में बैठकें हो रही हैं और यही सब यहां से 5 कि.मि. इधर और 5 कि.मि. उधर हो रहा है।

ऐसे कौन से किसान हैं जो आत्महत्या कर रहे हैं यह खतरनाक है और चेतावनी भी है। हमें समय रहते इस समस्या का समाधान करना होगा। जो किसान अब आत्महत्या कर रहे हैं उनकी उम्र केवल 30 वर्ष के आसपास है। युवा किसान आत्महत्या कर रहे हैं क्योंकि खेतीबाड़ी में न तो उनका दिल है और न ही आत्मा और उनके पास अन्य कोई विकल्प नहीं है। बहुत समय से में सुनता आ रहा हूँ कि देश के महान अर्थशास्त्री कहते आ रहे हैं कि किसानों को खेती के अलावा भी कुछ देखना चाहिऐ।

मुझे समझाने के लिऐ किसी रॉकेट साईंस की आवश्यकता नहीं है कि यदि मंदी में मुझे लगातार रहना पड़े तो मुझे कारोबार छोड़ देना चाहिऐ। 1.5 करोड़ परिवार कृषि छोड़ चुके हैं और वे भूमिहिन मजदूर बन चुके हैं क्योंकि जनसंख्या का स्थानांतरण वर्ष 2014 से पहले ही शुरू हो चुका था, अथवा आंकड़ों में भी दर्शाया गया है कि छोटे नगर अथवा बहुजनसंख्या वाले नगरों की संख्या बढ़ रही है। इस प्रकार लोग गांव से ही नहीं बल्कि छोटे–छोटे क्षेत्रों से भी जा रहे हैं और छोटे नगरों में भी रह रहे हैं न कि केवल दिल्ली में, इस प्रकार छोटे नगर और छोटे गांव बड़े होते जा रहे हैं। उन्हें नहीं मालूम की क्या करना है, वे आधा नगरों और आधा ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, वे लोग वापिस नहीं जा सकते क्योंकि गांव में कुछ भी नहीं है और इस कमी के दौरान नऐ किसान आत्महत्या कर रहे हैं। यह एक प्रर्वति बन चुकी है और कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पुने, बैंगलोर जैसे स्थानों पर अपना भाग्य आजमाने गऐ हैं।

कई प्रकार के लिऐ गऐ ऋणों से तालमेल बैठाने का प्रयास करना। एक किसान 22 लिऐ गऐ ऋणों से बाजीगरी करता है। मैंने आजतक इतनी संख्या में लिऐ गऐ ऋणों के साथ किसान को सिमटते नहीं देखा है। फिर भी सरकारी शब्दकोश में उसे एक किसान नहीं माना जाता, क्योंकि सरकार की किसान के लिऐ अपनी परिभाषा है, किसान वही जिसके नाम भूमि है, यदि उसके नाम भूमि नहीं तो वह किसान नहीं। हाल ही में, इसमें कुछ

संशोधन किऐ गऐ हैं जिनमें कहा गया है कि यदि कोई मजदूर भी गांव में मर जाता है तो उसे किसान ही माना जाऐ।

इस प्रकार से हम आत्महत्या के दूसरे चरण को देख रहे हैं। एक पीढ़ी से कहा जाता है कि वे कृषि प्रगति के लिऐ हाईटेक कृषि अपनाऐ लेकिन वह भी काम नहीं कर रही है। मेरा विचार है कि 1990 के दशक में सबसे अधिक किसानों ने गांव छोड़े थे और उस समय हमने ध्यान नहीं दिया कि भूमिहिन लोग और गरीब किसान गांव छोड़ रहे हैं क्योंकि अर्थव्यवस्था मंदे दौर से गुजर रही थी।

संकट के दूसरे चरण में प्रमुख मुद्दा यह है कि अनउत्पादक कहां पर समस्या से घिरे हैं। पिछले 2 वर्षों में आप देखेंगे कि यह किसान कपास उत्पादक या वनिला उत्पादक ही नहीं है, बल्कि उत्तरी क्षेत्र के कुछ भाग भी इसकी चपेट में आ रहे हैं। यदि अनाज उत्पादक इस प्रकार आत्महत्या करते रहेंगे तो देश का अनाज भंडार समस्या से घिर जाऐगा।

विदर्भ में जो संकट था कुछ वैसा ही संकट हरियाणा, पंजाब और उत्तर–प्रदेश में दिखाई दे रहा है क्योंकि किसानों को नहीं मालूम की यह संकट कब थमेगा क्योंकि हम समझते थे कि कपास के स्थान पर अनाज उगाना अच्छा विकल्प होगा। किंतु अभी में छत्तीसगढ़ से वापिस आया हूँ जहां के किसान यह नहीं जानते कि अगले वर्ष उनके साथ क्या होगा क्योंकि फसल के आधे मौसम में ही सरकार ने किसानों से कह दिया है कि वह उनसे पूरा अनाज नहीं खरीदेगी। इसी प्रकार से मौसम की भी अनिश्चित्ता है और इस पर किसी का कोई बस नहीं। लेकिन इन सबके लिऐ मुझे नितियों में अनिश्चित्ता दिखाई पड़ती है। देश में व्यापक सामाजिक अनिश्चिताऐं हैं। सबसे अधिक मूल्य अनिश्चित्ता। सुबह कपास के मूल्य रू. 4,000/– होते हैं और शाम होते–होते यह रू. 4,000/– हो जाते हैं। ऐसे में यदि आपने माल पहले बेच दिया तो आप को हानि हुई और यदि आप इंतजार करते हैं तो कल सुबह यह गिरकर रू. 3,300/– हो सकते हैं। इस प्रकार अनिश्चित परिस्थितियों में आप कब तक लगातार रह सकते हैं।

मैं आपको जलवायु परिवर्तन का उदाहरण देता हूँ। किसानों की तो बात अलग है, देश भी इसके लिऐ तैयार नहीं है, नीति निर्माता, वैज्ञानिक कोई भी इसके लिऐ तैयार नहीं है किंतु भारतीय किसानों के लिऐ यह एकमात्र सर्वाधिक चुनौती होगी। वर्ष 2013 में वर्षा नहीं हुई लेकिन अगस्त में एक दिन में ही 300 मि.मि. वर्षा हो गई थी। बड़े–बड़े औले गिरे। बुलधाना नामक एक गांव में लोगों ने सभी औले इकट्ठे किऐ और इन्हें एक कुऐं में डाल दिया। उस कुऐं में एक महीने तक बर्फ जमी रही। लेकिन इस औलावृष्टि ने बागवानी और बारह्मासी फसलों को नष्ट कर दिया और किसान समस्याओं से घिर गऐ। वार्षिक फसल के मामले में हम नहीं जानते की क्या उगाया जाऐ। किसमें अब समाप्त हो चुकी हैं और हम पूरी तरह से हाईब्रिड़ की दुनिया में आ चुके हैं और इस जलवायु परिवर्तन में यह प्रमुख कारण है।

इस प्रकार महाराष्ट्र राज्य जैसी सरकारें, किसानों को वास्तव में उस राशि से अधिक भुगतान कर रही हैं जो राशि कृषि बजट में निर्धारित थी। हम योजनाओं की तुलना में इस प्रकार के प्रासंगिक खर्चों/प्रतिपूर्तियों पर अधिक व्यय कर रहे हैं।